काली कुमाऊँ का शेरदा

दिनेश कर्नाटक

काली कुमाऊँ का शेरदा

यह पिछले कुछ दिनों जैसा उदास और रूखा-सूखा दिन था। बारिश न होने के कारण मौसम खुश्क हो चला था। जनवरी का महीना ढलान पर था, लेकिन अभी से धूप में बैठना मुश्किल होता जा रहा था। मौसम की इस बेरुखी ने लोगो को भी उदास कर दिया था। शंभू इधर-उधर की हाँकने के बजाए करवट लेकर नींद उड़ा रहा था, जबकि कालू फर्श के ऊपर मुँह फैलाकर हाँफ रहा था। वह बेसब्री से कमला का इंतजार कर रहा

था, जो कुछ ही देर में शेरदा के लिए खाना लेकर आने वाली थी। शेरदा के प्रेम से दिए टुकड़ों से उसकी भूख मिटती थी, जबकि पेट भरने के लिए उसने दो-तीन घर पकड़ लिए थे, जो उसकी चूँ-चूँ सुनते ही उसके सामने जूठन डाल जाते थे।

'क्या बात है, सब ठीक तो है?' शेरदा की असजहता कमला से छिप नहीं सकी थी।

'कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं... सब ठीक है!'

'सच कह रहे हो ना!' वह उसके जवाब से संतुष्ट नहीं हुई थी।

'अरे, तू जा, सब ठीक है!' उसने उसे जाने का इशारा किया था।

हाथ-मुँह धोकर वह अपने चौके पर आया तो उसकी नजर अधीर हो रहे कालू पर पड़ी। उसने रोटी के दो टुकड़े उसकी ओर बढ़ा दिए। कालू जल्दी-जल्दी रोटी के टुकड़े पंजों में फँसाकर खाने लगा।

उधर शंभू ने भी करवट बदली।

'लग गई तुझे भी खबर... सुबह से पड़ा हुआ है। कुछ काम-धाम कर लेता। कब तक ऐसे पड़ा रहेगा?'

'काम मिले तो सही ...मैं काम नहीं थोड़ा करना चाहता हूँ!'

'सुबह आया तो था, बिष्टजी का लड़का! तूने कह दिया कहीं जाना है। तब से जाने में ही है।'

'ये लोग काम कराने के बड़े माहिर हैं... पैसे देने में इनकी जान जाती है... दो-चार रूपये के लिए, चक्कर कटवा देते हैं... अरे, जब पैसे नहीं हैं तो काहे का दिखावा... मैं ऐसे लोगों के वहाँ काम नहीं करता हूँ!'

'हाँ... हाँ... तू तो बहुत बड़ा नवाब है ना... चल खाना खा ले!'

'मेरा तो पेट भरा है, तुम खा लो!'

'हाँ... हाँ... साला, कह ऐसे रहा है, जैसे नामकरण का भात खाकर आ रहा होगा!' कहकर शेरदा ने रोटी का एक और टुकड़ा कालू की ओर बढ़ा दिया।

कालू ने चैंककर शेरदा की ओर देखा। जैसे कहना चाह रहा हो, 'क्या बात आज बड़े मेहरबान हो रहे हो।'

'तुमने नहीं खाना है क्या?' खाने का डिब्बा अपनी ओर को बढ़ाते हुए देखकर शंभू ने पूछा था।

'आज बिल्कुल मन नहीं है यार, तू खा ले!'

'चलो कहते हो तो खा लेता हूँ। वैसा मेरा तो पेट भरा है!'

'चल... चल नौटंकी मत कर। मैं नहीं जानता हूँ तुझे... जनम-जनम का भूखा है तू!'

वह चौके पर आ गया। कपड़े के दोनों हिस्सों को मशीन में दबाया और जैसे ही चक्के को घुमाया, आँखों के आगे अँधेरा सा छा गया और वह मशीन के ऊपर गिर पड़ा। शंभू 'क्या हुआ... क्या हुआ' कहते हुए उसकी ओर लपका था। कुछ देर के लिए शेरदा का दिमाग सुन्न हो गया था। उसे लगा, जैसे दुनिया घूम रही है और वह पाताल की ओर को गिरता जा रहा है।

कई दिनों से उसे इस तरह के चक्कर आ रहे थे और छाती में तीखा दर्द हो रहा था। बीड़ी फूँकने के अलावा, उसमें और कोई भी ऐब नहीं था। उसने सोचा, 'डॉक्टर के पास जाकर निकलना तो कुछ है नहीं। खाली समय बर्बाद होगा। इतनी देर में कुछ कपड़े सी लूँगा। फिर क्या पता कोई नया ग्राहक ही आ जाए? जिसे देखो शहर में जाकर कपड़े सिलवाने को तैयार है!'

पहली बार वह अपनी हालत से डर गया था।

अभी तक कुछ भी तो नहीं कर पाया था वह। न अपना घर और न पक्का काम-धंधा। न अपनी जमीन, न अपनी साग-सब्जी! इससे अच्छे तो पहाड़ के अपने गाँव में थे।

रोज रूखा-सूखा जैसा हुआ, खिलाकर कमला उसे विदा कर देती थी और वह इस बड़-पीपल के चबूतरे पर आकर बैठ जाता था। गाँवभर के लोगों के लिए वह चबूतरा मिलन स्थल था। वहीं से गाँव की राजनीति और अर्थनीति के संबंध में बड़ी-बड़ी चर्चाएँ होती थी। लोगों के लिए संदेश भी वहीं से प्रसारित होते थे। लड़ाई भी वहीं होती और सुलह भी वहीं होती। लोग घर-परिवार से शुरू करके देश-दुनिया तक पहुँच जाते और कब दोपहर हुई और कब शाम, पता तक नहीं चल पाता था। शेरदा कपड़े सिलता रहता और लोगों की राजनीतिक पार्टियों, नेताओं और भ्रष्टाचार पर बातें चलती

रहती। कभी उनकी बातें उसकी समझ में आती तो काम-धाम छोड़कर ध्यान से सुनने लगता तो कभी बातों के समझ में न आने पर अपने काम में लग जाता।

कालू शेरदा को चबूतरे के पास ही भटकते हुए मिला था। शेरदा उसे अपने पास ले आया था। उसे अपने हिस्से का भोजन खिलाकर बड़ा किया। दूसरे तमाम लोगों की तरह उसे भी यह जगह इतनी अधिक पसंद आई कि यहीं का होकर रह गया। अब भले ही वह दिनभर कहीं भी हो आए, पर उसके दो ठिकाने तय हैं, एक यह चबूतरा और दूसरा शेरदा का घर, जहाँ रात को वह शेरदा के साथ चला जाया करता था।

शंभू कुछ दिन मजूरी करता, बाकि दिनों दारु में डूबे रहता। कभी उसने दिल्ली में काम किया था। वहाँ उसे फिल्मों का षौक हो गया था। जितनी भी फिल्में आस-पास के टाकिजों में लगती, वह उन्हें जरूर देखता था। फिर धीरे-धीरे वह वहाँ से ऊबने लगा था। उसे अपनी धरती की याद आने लगी और वह यहाँ चला आया था, जहाँ उसका कोई नहीं था। एक दीदी दूर कहीं थी। जो था... वह यहाँ की मिट्टी... यहाँ के लोग... यहाँ के खेत... यहाँ के बंजर और यहाँ की आबोहवा और पता नहीं क्यों यहाँ से लगने वाला अपनेपन का एहसास! कई बार वह कहता था, रिश्ता सिर्फ लोगो से ही नहीं होता, इनसान का रिश्ता और भी कई चीजों से होता है। और शायद इस रिश्ते ने उसमें यह उम्मीद भर दी थी कि वह यहाँ भूखा नहीं रह सकता!

गाँव के लड़के जब फिल्मों की बात करते तो वह उनसे कहता, 'फिल्में आज क्या बनती हैं? फिल्में तो वो थी, आवारा, बरसात, दो बीघा जमीन, बूट पालिश, संगम, नया दौर, पैगाम! और वो न जाने किन-किन फिल्मों का नाम लेता जाता और लड़के आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगते। कभी वह नरगिस को याद करता तो कभी मधुबाला और हेमामालिनी के हुस्न की चर्चा करता! कभी घंटों पुराने गीत गाते रहता। उसका सर्वाधिक पसंदीदा गीत था, 'ओ जाने वाले हो सके तो लौट के आना...।" इसे गाते समय उसकी आँखें नम हो जाया करती थी।

पहला झटका

शेरदा सुदूर काली कुमाऊँ अंचल के एक गाँव से यहाँ आया था। वहाँ की याद आते ही उसे सबसे पहले पक्की सड़क पर पहुँचने के लिए तय किया जाने वाला दस मील का उबड़-खाबड़ और चढ़ाई-उतार वाला सफर याद आता था। जब से उसने होश सँभाला, अपने गाँव को ही पूरी दुनिया समझता रहा। धीरे-धीरे उसे पता चला था, दुनिया बहुत बड़ी है। उसके गाँव और आस-पास के गाँवों के लोगों के लिए विकास और तरक्की का प्रतीक समीप का कस्बा था। उनके सपने वहाँ की दुकानों में सजे रहते थे। पहली बार

उस कस्बे को देखने के बाद उसे अपने गाँव की असलियत समझ में आई थी और वह कस्बे के प्रति अभिभूत सा हो गया था।

कभी लोगों से भरा-पूरा था उसका गाँव! ऊँचाई की ओर ब्राह्मणों और ठाकुरों के घर थे। अधिकांश जमीनें उन्हीं की थी। इतनी आबादी वाला गाँव आस-पास में दूसरा नहीं था। जबकि गधेरे (छोटी पहाड़ी नदी) से ऊपर की ओर उनके घर थे। उसकी बिरादरी के लोग मकान बनाने, कारपैंटरी करने, गाने-बजाने, लोहारी करने, खेतों में हल चलाने और कपड़े सिलने के जैसे तमाम काम किया करते थे। आस-पास के गाँवों में उनकी खूब पूछ थी। ब्राह्मणों और ठाकुरों के बच्चे नजदीक के स्कूलों में पढ़ने जाया करते थे। लोग बताते हैं, जब स्कूल कस्बे में हुआ करता था। मल्ली धार (ऊँची जगह) के लोग तब भी वहाँ पढ़ने जाया करते थे। अब उनमें से कई लोग देश में दूर-दूर नौकरी में हैं। जो यहाँ बचे हैं वो, खेती-बाड़ी, पुरोहिती और पंचायती राज के तहत गाँवों का राज-काज चलाते हैं।

उसकी तरफ के लोगों को अपने बच्चों को पढ़ाने के बारे में सोचने तक की फुर्सत नहीं मिल पाती थी। वैसे भी वे उसे अपना काम नहीं समझते थे। यही ऊपर के ठाकुर-ब्राह्मण लोग उन्हें समझाया करते थे। लेकिन जब भी आस-पास के गाँव में सरकार का कोई बड़ा अफसर आता तो उनसे बच्चों को स्कूल पढ़ाने को कहता। वह कहता समय बदल गया है, अब हर व्यक्ति पढ़-लिखकर अपनी और अपने लोगों की तकदीर बदल सकता है। कुछ लोग ऊपर वालों के व्यंग्यों की अनदेखी कर अपने बच्चों को पढ़ने को भेज देते थे, लेकिन कुछ समय बाद खुद ही काम-धंधों की वजह से बीच में छुड़ाकर अपने साथ लगा लेते थे। कुछ जैसे-तैसे कुछ कक्षाएँ पास कर लेते तो अपने काम-धंधे से नफरत करने लगते और एक दिन घर से भागकर शहरों में खो जाते।

बाबू की मशीन के चक्के की तरह शेरदा के जीवन का चक्का भी तेजी से घूमा था। एक दिन खड़े पहाड़ से घास काटकर लाने के लालच में माँ गिरकर मर गई। बाबू अपने काम-धंधे में इतना व्यस्त था कि घर के सारे काम शेरदा के हिस्से में आ गए। लोगों ने उससे दूसरी शादी करने को कहा, पर वह इसके लिए राजी नहीं हुआ। वह उसकी माँ की जगह किसी दूसरी औरत को देने को तैयार नहीं था। घर के काम-धंधे निपटाकर वह पिता के पास आकर बैठ जाता और गौर से उसे कपड़े सीते हुए देखता। उसकी ललक देखकर कई बार बाबू उसे मशीन सौंप दिया करता था। आस-पास के इलाके में बाबू की खूब पूछ थी। लोग अपने कपड़े जल्दी से जल्दी सिलवाने के लिए उसकी

खुशामद किया करते थे। तब वह सोचता था, एक दिन वह भी बाबू की तरह खूब अच्छे कपड़े सिला करेगा। और उसके सामने भी लोग पिता की तरह चिरौरी किया करेंगे।

एक दिन जाड़ों की सुबह की धूप की तरह कमला उसके जीवन में दाखिल हुई थी। घर में औरत की जरूरत को देखते हुए जल्दी ही उसकी शादी कर दी गई। पहली बार उसकी समझ में आया, जीवन में अँधेरा और उजाला ही नहीं है। इसमें और भी कई रंग हैं। पहले जो दिन सुबह, दोपहर और शाम के रास्ते से होते हुए तेजी से गुजर जाया करता था, अब फैलकर काफी बड़ा हो गया था। अब हर दिन नई खुशियाँ और नए सपने लेकर आता था। यह भी समझ में आया कि आने वाला दिन अपने में कौन सा रहस्य छिपाए हुए हो, कोई नहीं कह सकता। यह कि हर नए दिन के साथ जो चीजें हमें रोज की जैसी और पुरानी सी लगती हैं, वे सब नई होती हैं।

कमला के साथ बीता हुआ, तब का एक-एक पल अमूल्य था। अजीब बचपना सा था, अजीब आकर्षण था। वह पानी भरने नौले या लकड़ी-घास के लिए जंगल जाती वह भी चोरी-छिपे वहीं पहुँच जाता।

कमला कहती, 'तुम्हें शर्म नहीं लगती लोग क्या कहेंगे!'

वह कहता, 'तू मेरी पत्नी है, कहते रहे, जिसे जो कहना है!'

'तुम बड़े बेशर्म हो!' कहकर वह अपने काम में लग जाती और वह पास के पत्थर में बैठकर उसे देखता रहता।

धीरे-धीरे तराई-भावर का आकर्षण लोगों में बढ़ता जा रहा था। वैसे भी नौकरी के लिए बाहर जाने वाले जहाँ खूँटा गाड़ते वहीं के होकर रह जाते थे। जो भी बाहर निकलता अपने साथ अपना पूरा कुनबा लेकर चला जाता। फलस्वरूप मकान ही नहीं गाँव भी सुनसान होने लगे थे। एक जाता, लौटकर भावर की खेती, पानी, उपज का जिक्र करता और अपने साथ दूसरे को भी लेकर चला जाता। जीवन भर का कमाया-धमाया लगाकर बीघे-दो बीघे जमीन खरीदकर लोग भाबरिए बन जाते। बिरादारी बहुत बड़ी चीज होती है। जहाँ जाते अगल-बगल अपने लोगों को बसाते जाते। देखा-देखी शिल्पकारों के गाँवों से भी लोगों का भावर जाना शुरू हो गया। लोग ही नहीं रहेंगे तो किस के वहाँ हल बाएँगे। किसका साझा करेंगे। किसका मकान बनाएँगे। वहीं हुआ जिसको देखो, भावर को जाने को तैयार। भेड़ की तरह जहाँ को एक निकल गया, औरों को भी उसके पीछे लगना ही हुआ।

बाबू भावर जाने को राजी नहीं थे। वहाँ को लेकर उनके दिमाग में कई शंकाएँ थी। पूरी जिंदगी यहीं काट दी। बाहर जाने के नाम पर कभी लोहाघाट से आगे जाना नहीं हुआ। तराई-भावर का नाम सुनते ही पता नहीं क्यों उन्हें अजीब सा भय घेर लेता था। उनकी समझ में नहीं आता था, लोग यहाँ आकर वहाँ की गुंडा-गर्दी और लूटपाट की खबरें सुनाते और फिर वहीं को चले जाते। न तो वहाँ के रहन-सहन और जीवन के बारे में कुछ पता था और न ही जमीन-जायदाद खरीदने के लिए उतना पैसा ही था। फिर औरों की तरह अपना कोई ऐसा रसूखदार बिरादर भी नहीं था, जिसके भरोसे भावर नाम की इस नदी में छलाँग लगा दी जाती।

सब कहते भावर जाओ... भावर जाओ... यहाँ क्या रखा है? लेकिन जाना कहाँ है? यह समझ में नहीं आता था। कई समर्थ लोगों ने दोनों जगह कारोबार जमा रखा था। काम कम होता जा रहा था। उधर बाबू ढीले पड़ते जा रहे थे। सोचते-कलपते बीमार पड़ गए और एक दिन अपने जीवन भर की जमा पूँजी की पोटली शेरदा को थमाकर इस दुनिया को अलविदा कह गए।

बाबू क्या गया, शेरदा को लगने लगा जैसे उसके साथ ही गाँव की बची-खुची रंगत भी जाती रही। न ही कोई रिश्तेदार नजर आता और न ही कोई बिरादर! तो क्या पिता के होने मात्र से उसे गाँव भरा-भरा लगता था। तो क्या गाँव न छोड़ने की जिद करने वाले उस आखिरी आदमी के साथ उसका हौंसला भी जाता रहा। बनबसा और खटीमा की ओर को गए हुए यार-दोस्त कब से कह रहे थे, यहाँ आ-जा काम-धंधा बढ़िया जम जाएगा। तब आँखों में एक अलग ही दुनिया के सपने लिए हुए एक दिन एक कंधे पर गृहस्थी तो एक कंधे पर सिलाई की मशीन को रखकर और एक-एक पोटली कमला और गणेश के सिर पर रखकर सुबह-सुबह सड़क पर पहुँच गए थे।

कुछ भी अपना नहीं

पहली बार शेरदा इस तरह गुमसुम बैठा था। अब तक किसी ने उसको सोच में पड़े हुए नहीं देखा था। रोज की तरह चौके के बगल में आकर बैठने वाले आते और दुआ-सलाम के बावजूद शेरदा को निस्पृह पाते तो पूछते 'क्या बात है शेरदा, आज रंग उड़ा हुआ क्यों नजर आ रहा है!'

शेरदा वैसे ही बुझे मन से 'सब ठीक है... अपनी सुनाओ!' कहता और फिर से निस्पृह हो जाता तो आने वाले कुछ देर में वहाँ से खिसकने में ही अपनी भलाई समझता।

शेरदा हैरान-परेशान सा चारों ओर देख रहा था। सामने के टीले में अमरूद के जंगली पेड़ों में इस बार खूब फल आया था। बच्चे अमरूदों पर निशाना साध रहे थे। दूसरी ओर बंदरों का एक झुंड झांड़ियों में कूद-फाँद रहा था। बंदरों के कुछ बच्चे एक डाली से दूसरी डाली में छलाँग लगाकर अपने कौशल को बढ़ाने में लगे थे तो कुछ अपनी माताओं की गोद से चिपके थे। आज ही दुकान में राशन आया था। लोगों की भीड़ ने दुकान को घेर रखा था।

शेरदा सोच रहा था, इतने सालों में वह बच्चों के लिए कुछ भी तो नहीं कर पाया। पहाड़ से आने पर जान-पहचान वालों ने एक टूटे-फूटे खंडहर में बसेरा करवा दिया। तब से उसी में रहना हो रहा था। कभी मकान मालिक के कपड़े सिल देता। कभी उनके बुलाने पर कमला घर का कोई काम निपटा आती। पहले ही तय हो गया था, देना कुछ नहीं है। रखवाली भर करनी है। दीवारें टूट रही थी। जब कभी फुर्सत होती वह हल्की-फुल्की मरम्मत करके कुछ और दिनों का इंतजाम कर लेता था। लेकिन मकान के ढहने का भय हमेशा बना रहता था। माली हालत ऐसी थी कि कोई दूसरा घर देखने की हिम्मत नहीं जुटा पाया था।

कमला आस-पास के खेतों में काम करने जाया करती थी, जिससे साग-सब्जी का प्रबंध हो जाता था। वह जीतना कमाता था, राशन-पानी, बच्चों की पढ़ाई और लत्ते-कपड़े में खप जाता था। बैठे-बैठे पीठ अकड़ जाया करती थी। एक ढंग की दुकान, पैडल मशीन का अरमान, अरमान ही बनकर रह गया था। समय शेरदा से तेज दौड़ रहा था। कुछ ही सालों में यहाँ भी पहले जैसा काम नहीं रहा था। समय कपड़े नहीं, उसके लेबल को दिखाने का आ चुका था। नए लड़के रेडीमेड कपड़ों की ओर आकर्षित होते जा रहे थे, उधड़ा और कटा-फटा सिलने के अलावा बड़े-बूढ़ों का ही काम रह गया था।

वह सोच रहा था, हम भेड़ें ही तो हैं, जहाँ को झुंड चला उसके पीछे हो लिए। झुंड में आगे वाली भेड़ें तो पार पहुँच जाती हैं, जबकि पीछे वाली भेड़ों का कुछ भी निश्चित नहीं होता। क्या कमी थी गाँव में, अपना मकान, अपनी जमीन। सब पीछे छूट गया। यहाँ कुछ भी अपना नहीं! अब लौटने के लिए गाँव भी तो अपना नहीं रह गया था।

घर को निकलते हुए अँधेरा घिर आया था। घर-मुहल्लों के कुत्तों ने अपना काम सँभाल लिया था। रेडियो के समाचारों का समय हो चुका था। प्रधानमंत्री बता रहे थे, देश का खजाना खाली हो चुका है। वे दीवारें तोड़ने की वकालत कर रहे थे। फिर वे विदेषी निवेश, मुक्त बाजार और खुली अर्थव्यवस्था और भी न जाने क्या-क्या कह रहे थे,

जो शेरदा की समझ में नहीं आ रहा था। उसने मन ही मन सोचा, प्रधानमंत्री हैं तो देश और हम सब के भले के लिए ही कर रहे होंगे।

और दिनों उसके आने से पहले उसकी आवाज कमला और बच्चों तक पहुँच जाया करती थी। आज कुछ भी कहने-सुनने का मन नहीं था। गणेश, एक खाट पर पसरा हुआ था। लड़की बैठी हुई कोई खेल खेल रही थी। उसे देखते ही 'बाबू आ गए... बाबू आ गए' कहते हुए माँ की ओर दौड़ी थी। आज उसे दौड़ते हुए टोकने की भी ताकत नहीं थी। खाट पर शरीर को छोड़ते ही वह जोर से कराह उठी। देर से राह देख रही कमला, घबराई हुई कमरे पर पहुँची।

'क्या हुआ... कब आए... आवाज भी नहीं लगाई!'

शेरदा ने चुपचाप करवट बदली थी।

'तबियत खराब है क्या?'

'पता नहीं क्या हुआ... शरीर में जान नहीं है...!'

'सूरत कैसी हो गई है...?' पानी का लोटा देते हुए वह बोली थी।

'घबराने की बात नहीं है... कुछ न कुछ तो होता ही रहता है... खना, कल तक अपने आप सब ठीक हो जाएगा!'

'कई दिनों से तुम्हारी हालत देख रही हूँ... अब तुम्हारी एक नहीं चलेगी, कल डॉक्टर को दिखाएगे... कुछ खा लो...!'

'कुछ खाने का मन नहीं है। आराम करने का मन हो रहा है।' कहकर वह करवट बदलकर सो गया था।

पर यह सोना और दिनों जैसा नहीं था। लग रहा था, जैसे खूब थकने के बाद उसे आराम का मौका मिल रहा हो। आज उसे न तो मामूली हवा में खड़खड़ा उठने वाली छत, न घर-गृहस्थी और न भविष्य के बारे में सोचने की फिक्र थी। उसे आराम के दलदल में उतरते जाना अच्छा लग रहा था।

आधी रात को अचानक नींद खुली तो उसने अपने को पसीने से भीगा हुआ पाया। फिर खाँसीसी का दौर शुरू हुआ तो वह खाँसी सता चला गया। कमला कभी उसको पानी

पिलाती तो कभी उसकी छाती की मालिश करती। कभी खाँसीसी की गोली या कोई चूरन लेकर आती। सब बेअसर रहा था।

'नींद खराब कर के रख दी!' पेशाब के लिए बाहर को जाते हुए गणेश ने कहा था।

जिसे वह सुन नहीं पाया था और पूछने पर कमला ने कह दिया था कि तुम्हारी तबियत के बारे में पूछ रहा था।

लौटकर वह बिस्तर पर करवट बदलकर सो गया।

वह लोगों को देख रहा था और उनसे अपने जीवन की तुलना कर रहा था। धीरे-धीरे उसे लगने लगा था, हमें ऐसे ही जीना होगा। अपनी हर चीज से उसे चिढ़ होने लगी थी। घर की गरीबी, बेबसी ओर लाचारी का दोशी वह शेरदा को मानता था। उसे लगता था, उसे उनके लिए बेहतर सुविधाएँ जुटानी चाहिए थी। इधर ज्यों-ज्यों उसकी जरूरतें बढ़ती जा रही थी और घर से 'ना' सुनने को मिलता जा रहा था तो उसका गुस्सा और भी बढ़ता जा रहा था।

सुनसान चबूतरा

शेरदा को घर में पड़े-पड़े करीब एक हफ्ता होने को था। कमजोरी इस कदर हावी हो चुकी थी कि बिस्तर से उठने की हिम्मत नहीं होती थी। बंगाली डॉक्टर की दवाई के अलावा चंदन सिंह की भभूत चल रही थी। कमला रोज पूर्णागिरी की ओर हाथ जोड़कर, पति की तबियत के लिए प्रार्थना करती थी। फिर जब थूक के साथ खून आने लगा तो सब कुछ छोड़कर और बचे-खुचे रुपये लेकर बड़े अस्पताल जाना पड़ा था। डॉक्टर ने कई तरह के टैस्ट करवाए। तीन दिन बाद पता चला कि तपेदिक हो गया है और स्थिति गंभीर है। तुरंत इलाज शुरू करने की जरूरत है।

इतने दिनों में घर की अर्थव्यवस्था निढाल हो चुकी थी। बिरादरी वाले, दोस्त और रिश्तेदार हाल-चाल पूछकर अपनी-अपनी दुनिया में सिकुड़ गए थे। चबूतरे पर चौका एक ओर पड़ा हुआ था। रोज की तरह आस-पास के लोग इकट्ठा होकर बहस-मुबाहिसों में लगे रहते थे। शंभू के बस में यूँ तो बहुत ज्यादा कुछ था नहीं, लेकिन विपत्ती के इस समय में उसका हर वक्त साथ होना बहुत काम आया था। सारी भाग-दौड़ वही करता था। जब तक उसके पास गुंजाइश रही, दवाई वगैरा के पैसे भी वही देता रहा। दवाइयों ने कुछ असर दिखाया तो वह भी काम की तलाश में निकल गया।

पल्ले में जो था, इन दिनों में निपट चुका था। सहयोग के नाम पर अपनों ने एक से बढ़कर एक सुझाव दे दिए थे।

चबूतरे पर इकट्ठा होने वाले लोग आए दिन नौकरी और आरक्षण की बातें किया करते थे। कोई-कोई तो शेरदा को सुनाकर अपने हिस्से की नौकरी खाने तक का आरोप लगा दिया करता था, जिसके जवाब में वह कहता, 'मैं तो यहाँ बैठा हूँ। मेरे पास कौन सी नौकरी है!'

जवाब में वह कहता, 'गणेश को दस पास करवा ले। देखना कुछ ही दिनों में नौकरी में होगा। अब तो सरकार सब कुछ तुम्हारे लिए ही कर रही है!'

उन दिनों मन ही मन शेरदा को यह जानकर बड़ी खुशी होती कि सरकार उनका खूब ख्याल रख रही है, लेकिन यह भी समझ में नहीं आता कि अब तक उनकी बिरादरी के किसी आदमी का भला क्यों नहीं हुआ? सब तो वैसे ही हैं। फिर वह खुद को समझाता, पढ़ेंगे नहीं, मेहनत नहीं करेंगे तो कुछ कैसे पाएँगे!

गणेश की पढ़ाई के लिए वह कोई भी समझौता करने को तैयार रहता था। तभी गणेश को उसने अपने पास नहीं बैठने दिया था। अब गणेश दस का इम्तहान देने वाला था। सारी उम्मीदें उसी से थी। उसे यकीन था एक दिन, गणेश पढ़-लिखकर बड़ा आदमी बनेगा, तब उनके पास भी अपना घर होगा। रोजी-रोटी के लिए ऐसी हाय-हाय नहीं होगी। कमला को दूसरों के खेतों में काम नहीं करना होगा। लेकिन गणेश के तेवर देखकर डर भी लगता था। धीरे-धीरे वह उनके प्रति उदासीन सा होता जा रहा था। उसकी आदत ही ऐसी है, सोचकर वह अपने मन को समझा लिया करता था। फिर भी एक बात उसकी समझ में नहीं आती थी, कि यह कैसी पढ़ाई है जो बच्चों को अपने घर, माँ-बाप, उनके काम-धंधे और अपने हालात से लड़ने के बजाए नफरत कराना सीखाती है।

जितने लोगों से सहायता को कहा जा सकता था, कमला वहाँ से कुछ न कुछ ला चुकी थी। एक-दो जगह जाने के बाद गणेश ने और किसी के पास जाने से साफ मना कर दिया था। जब रसोई की ओर देखने और अनाज के बर्तनों को छूने में कमला को डर लगने लगा तो उसकी छटपटाहट बढ़ने लगी। बार-बार दिमाग में एक ही बात घूम रही थी कि अब क्या होगा? ऐसे में जब जीजा जी का हाल जानने के लिए उसकी छोटी बहन पास के शहर से आई तो उसने रो-रोकर अपनी हालत उसके सामने रख दी।

छोटी बहन अपने साथ कुछ रुपये लाई थी, जो उसने उसको सौंप दिए। काम के नाम पर उसने उससे शहर आकर घरों में काम करने की राय दी। उसने बताया जाते ही काम मिल जाएगा। रहने का इंतजाम भी वह करवा देगी। शेरदा ने उसकी इस तजवीज को एकदम खारिज कर दिया था। जबकि कमला को बहन का सुझाव काफी पसंद आया था। उसने शेरदा से सवाल किया, - 'तो फिर भीख माँगूँ... तुमको वो अच्छा लगेगा... कुछ दिनों की बात है ...तुम ठीक हो जाओगे... फिर सब ठीक हो जाएगा... तब तक... यही सही... काम करने में कैसी शरम... कोई चोरी थोड़ा करने जा रही हूँ!'

शेरदा क्या कहता? वह कहती रही।

'तुम देख रहे हो... अब यहाँ जंगल से लकड़ी लाने में भी कोई फायदा नहीं है... सब के घरों में गैस आ गई है... जिनके नहीं आई है... वो खरीदने वाले हैं... खेत के काम से एक आदमी का भी रोज का गुजारा नहीं हो सकता!'

अगले ही दिन कमला ने घर का सामान बाँधकर रोड पर पहुँचा दिया। जाते समय कुछ पड़ौसी इकट्ठा हो गए थे। इस तरह अचानक उनका जाना किसी को अच्छा नहीं लग रहा था, पर उनके बस में कुछ नहीं था। कमला ने उनको बताया था कि उसे शहर में काम मिल गया है। यह कि वहाँ से शेरदा का इलाज और अच्छी तरह से हो पाएगा। गणेश ने दस की परीक्षाएँ यहीं देनी थी, परीक्षाओं के दौरान उसके रुकने का इंतजाम हो गया था। कालू भी शायद सब कुछ समझ गया था। वह चूँ-चूँ करते हुए बेचैनी से इधर-उधर घूम रहा था। शंभू सामान को रोड तक पहुँचाने में सहायता करवा रहा था। वह उदास था। उसने कहा था, वह शहर में आकर हाल-चाल लेता रहेगा।

शहर को जाते हुए एक खाली ट्रक को रुकवाकर वे उस पर सवार हो गए थे। कालू ने चूँ-चूँ करते हुए उचककर उनके साथ बैठने की कोशिश की पर कामयाब न हो सका। कस्बे के पीछे छूटते ही कमला की रुलाई फूट पड़ी। वह मन ही मन गोलज्यू को याद करती जा रही थी। 'तेरा ही आसरा है, भगवान... हमारी रक्षा करना!' वह देर तक सुबकती रही, जबकि शेरदा चुपचाप एक ओर को मुँह करके बैठ रहा था।

ट्रक के चलने के साथ ही कालू भी उसके पीछे दौड़ने लगा। ड्राइवर भला आदमी था, कुत्ते को इस तरह दौड़ते हुए देखकर उसका दिल पसीज गया। उसने उसे भी पीछे ले लिया। कालू को अपने बीच पाकर उन्हें लगा, जैसे कोई अपना उनके बीच आ गया हो।

मजबूरी और अहं

हालात मनुष्य को कई नई और अनजान चीजें सीखा देते हैं। शहरी तौर-तरीके समझने में कमला को कुछ समय दिक्कत हुई। फिर तेजी से वह उस जीवन में ढलते चली गई। उसे इतना काम मिल गया कि उसका एक-एक पल कीमती हो गया। जल्दी ही वो लोग बहन के वहाँ से किराए की खोली में आ गए।

एक बात और हुई। अपने पर बिल्कुल भी ध्यान न देने वाली कमला ने जब शहर की काम पर जाती हुई महिलाओं को देखा, तो उसे लगा घर, पति और बच्चों की चिंताओं के अलावा भी और कोई चीज है और वह है उसका अपना वजूद!

इस सारी भागदौड़ में वह कहाँ है?

यह परिवर्तन कमला को बड़ा आकर्षक महसूस हो रहा था जबकि शेरदा को वह पहले से बदली-बदली सी लगने लगी थी। उसके सेवाभाव में भी पहले जैसी बात नहीं रही थी।

'ठीक है... आज मैं घर में पड़ा हूँ... मजबूर हूँ... हमेशा ही ऐसे ही थोड़ा रहूँगा!' एक दिन मामूली बात पर उसके अंदर का आहत पुरुष बाहर निकल आया था।

'मैं अब और क्या करूँ... इस घर को चलाने के लिए... मुझे दिनभर कोल्हू के बैल की तरह खटना पड़ता है... दम लेने भर की फुर्सत नहीं मिल पाती है!'

'तेरा घर-घर जाकर काम करना मुझे अच्छा थोड़ा लगता है... जल्दी ही तुझे बाहर जाने से मुक्ति मिल जाएगी... मैं कल ही बाजार में अपने लिए काम ढूँढ़ने जाऊँगा!'

'अभी तुमने आराम करना है... डॉक्टर कह रहा था, अभी काम करने की हालत नहीं है तुम्हारी!'

'फिर क्या करूँ... अपनी आँखों के आगे... बीवी को घर से बाहर जाते हुए देखूँ... उसका लाया हुआ खाऊँ!'

'मेरा लाया हुआ खाने में तुमको क्या परेषानी है... मेहनत से कमा कर लाती हूँ... अपने को बेचकर थोड़ा लाती हूँ!' कहकर वह घर से चली गई थी।

शेरदा से उसे ऐसी उम्मीद नहीं थी। एक ओर वह सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर घर को बचाने में लगी है, दूसरी ओर शेरदा उसका हौंसला बढ़ाने के बजाए उसके काम को शक से देख रहा था। इतने दिनों बाद पहली बार काम पर जाते हुए उसकी चाल ढीली पड़ी थी। पहली बार उसका उत्साह धुआँ-धुआँ हुआ था।

'इतने के लिए मर्द, मर्द ही हुआ!' बाद में उसने अपने को समझाया था।

उधर शेरदा मन ही मन अपने ईष्ट को याद कर रहा था, 'प्रभु, पितरों का घर छूट गया। बिरादरी का साथ छूट गया। घर की लाज को घर-घर में लोगों का जूठा-गंदा साफ करना पड़ रहा है। अब और कैसे-कैसे दिन दिखाओगे प्रभु! मुझे कुछ करने लायक बना दो ...दया-दृश्टि बनाए रखना प्रभु! हम गरीबों के तुम्हीं ठैरे प्रभु... बस, तुम्हीं!'

गणेश परीक्षाएँ देकर आ चुका था और शहर की नशीली हवा के साथ बहे जा रहा था। माँ का दूसरों के घरों में काम करना उसे बुरा लगता था, पर उसके कमाए रुपये उसे बहुत अच्छे लगते थे। नए-नए बहाने बनाकर माँगे गए रुपयों को दोस्तों के साथ मिलकर उड़ाना भी उसे खूब पसंद था। उस पर न तो माँ-बाप का कोई जोर था और न ही पढ़ी हुई किताबों का कोई असर था। उसे सड़कों, बाजारों और मोहल्लों में घूमना अच्छा लगता था।

सियार

कमला के लिए शहर में आना किसी नई दुनिया में आने की तरह था। न यहाँ खेत थे, न जानवर, न खुली हुई जमीन। जहाँ देखो आदमी, आदमी के ऊपर चढ़े जा रहा था। यहाँ ऐसे लोग भी थे, जो धरती में कदम नहीं रखते थे और ऐसे लोग भी थे, जिनको दो गज जमीन भी नसीब नहीं थी। यहाँ आदमी होते हुए भी हर आदमी अजनबी नजर आता था। यहाँ जंगली जानवर नहीं थे, लेकिन सबसे बड़ा खतरा आदमी से था। हर आदमी दूसरे को डराने में लगा हुआ था। किसी ने लंबी कार ली थी, किसी ने आलीशान मकान बनाया हुआ था और किसी के इर्द-गिर्द हथियारबंद लोग उसकी छाया की तरह मँडराते रहते थे।

हर दिन बीतते गए और शेरदा गुमसुम होता चला गया। किसी दिन शरीर साथ देता तो वह कहीं घूमने निकल जाता और अँधेरा होने पर लौट आता। उसने कुछ सिलाई की दुकानों पर काम के लिए बातचीत की थी, पर मालिकों की उपेक्षा और हिकारत का भाव उसकी समझ में नहीं आया था। यही लोग ग्राहकों से अलग ही सुर में बात करते थे। ठीक है काम मत दो, पर बात तो सही से कर दो, मैं भीख तो नहीं माँग रहा! कमला से भी पहले की तरह बातचीत नहीं हो पाती थी। वह कुछ कहता तो वह 'हाँ... हूँ' कहकर आगे बढ़ जाती। यहाँ जिसे देखो वो व्यस्त था। अगर कोई नकारा था तो वही था।

इस बीच उसे, गणेश के रिजल्ट का पता चला। पूछने पर भी गणेश ने कुछ नहीं बताया। कमला के पूछने पर 'पास हो गया हूँ' कहकर वह तेजी से घर से बाहर निकल गया था। उसकी भाव-भंगिमा कुछ और ही कह रही थी। इधर वह सुबह घर से निकलता तो रात को सोने के लिए ही आता था। कमला उसको सही रास्ते पर चलने और घर में रहकर पढ़ने की नसीहतें दे-देकर थक चुकी थी।

उसे लगता जैसे उसके घर के दोनों पुरुष गूँगे-बहरे हो गए हैं। गुस्से में भरकर कभी वह बर्तन पटकती, कभी दरवाजे भड़भड़ाती। बड़बड़ाती... उसका लड़ने को मन करता था, पर वह किस से लड़ती!

उस दिन छोटी बहन के पति ने आकर बताया कि गणेश का पास-फेल होना तो एक तरफ रहा, उसने परीक्षा तक नहीं दी है। सुनते ही शेरदा के हाथ-पाँव काँपने लगे और वह सुबह कमला की सबसे बुरी सुबह बन गई। इतना बड़ा झूठ! दिन-रात की मेहनत का ये ईनाम! उस दिन वह काम पर भी नहीं गई। उसे लगा जैसे वह नदी के किनारे लगने के बजाए उसके भँवर में फँस गई है और भँवर उसे अपने साथ पाताल की ओर ले जाता जा रहा है।

मन न होते हुए भी अगले दिन शेरदा को खिला-पिलाकर कमला काम पर चली गई। बेटी से कुछ देर में आने को कहकर शेरदा भी कहीं को चला गया। शाम हुई वह नहीं लौटा! कमला रातभर उसकी राह देखती रही। अगले दिन बेटी को समझा-बुझाकर वह इस उम्मीद से काम में चले गई कि शंभू से मिलने चला गया होगा। दिन तक लौट आएगा। उसे उम्मीद थी, किसी जान-पहचान वाले के वहाँ गया होगा।

इस तरह बिना बताए हुए वह आज तक नहीं गया था।

तब से एक महीना होने को है, वह अभी तक वापस नहीं आया। न वह शंभू के पास गया था, न ही गाँव और न ही किसी रिश्तेदार के वहाँ! कमला ने जिससे भी कहा उसने उसे चिंता न करने और भरोसा रखने की सलाह दी। आखिर इस परदेश में उन सब को अकेला छोड़कर वह कहाँ चला गया। वह ऐसा पत्थर हृदय तो नहीं था। क्या उसे उनका थोड़ा सा भी ख्याल नहीं आता होगा? वह बहन और आस-पड़ोसके लोगों को लेकर कई बार थाना-कोतवाली हो आई थी। पहली बार तो पुलिस वालों ने बगैर कुछ सुने ही भगा दिया था। कह रहे थे, शहर में मंत्रीजी दौरे पर आ रहे हैं। अगली बार उसे समझाते हुए दरोगाजी ने कहा था, घबरा मत वो कोई बच्चा थोड़ा है, आ जाएगा एक-दो दिन में! इसके बाद जब वह बहन के कहने पर मोहल्ले के नेता किस्म के व्यक्ति को साथ लेकर आई तब जाकर उसकी शिकायत दर्ज की गई।

किसी अनहोनी की आशंका के मारे कमला का बुरा हाल था। मन कुछ कहता था, जबकि दिल कुछ और ही कहता था। गणेश अब कभी-कभी कुछ अजीब लड़कों के साथ भूला-भटका सा आ जाया करता था। उसकी बहन उन लोगों को पानी दे दिया करती थी। माँ के न होने पर चाय बनाकर पिला देती थी। कमला ने कुछ दिनों के बाद काम पर जाना शुरू कर दिया था। वह जहाँ जाती, मालकिनों के कुरेदने पर अपनी कहानी लेकर बैठ जाती। मालिक लोग हमेशा ही उसकी मदद करने की बात किया करते थे। सभी ने उसको भरोसा दिलाया था कि वह मन लगाकर काम करती रहे। वे पुलिस पर दबाव डलवाकर उसके पति को ढुँढ़वा देंगे। गणेश भी उससे यही कहता था कि वह चुपचाप अपना काम करती रहे, एक दिन शेरदा लौट आएगा। उसे भी लगता था, सब ठीक कह रहे हैं, एक दिन शेरदा लौट आएगा!